न मैं चुप हूँ
न गाता हूँ

(गीत और कविताओं का अनुपम संग्रह)

आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

कृति : न मैं चुप हूँ न गाता हूँ
कृतिकार : आचार्य वसुनन्दी जी महाराज
संपादक : आर्यिका वर्धस्वनन्दनी माताजी
संस्करण : प्रथम
प्रतियाँ : 1100, सन् 2015
मुद्रक : एन.एस. एन्टरप्राईजिज, दिल्ली
9810035356

श्रमण संस्कृति के संवाहक, तपस्या के शिखर
श्रुतरूपी धन से सम्पन्न, धर्म प्रवचन में निष्णात
आत्मिक एवं बाह्य उभयविध सौन्दर्य से सुशोभित
स्वयं मोक्षार्थी श्रेष्ठ संत, अध्यात्म सरोवर
के राजहंस, अक्षर शिल्पी, परम वाग्मी,
चारित्र शिरोमणी, वाचनार्ह, जन-जन के,
हृदय निवासी, साधना के शिखर पुरुष,
गुणों के आधार, परम उपकारक
वात्सल्य रत्नाकर, प्रज्ञासंत, सूरिसंत
सदास्तुत्य, त्रिकाल वंदनीय परम
पूज्य आचार्य गुरुवर १०८ श्री
वसुनंदी जी मुनिराज के २७वें
दीक्षा दिवस के अवसर पर
सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति
सहित कोटिशः नमन
करते हुए उन्हीं के
कर कमलों में सादर
समर्पित...

अनुक्रम

श्री अजितनाथ स्तवन	५
क्या बाधा बाधक बन पायेगी	९
कारवाँ गुजर गया गुवार देखते रहे	११
राह बदल - हरा बन	१३
वही मृत्यु की मृत्यु करके	१४
है सुख भरा संसार मेरा	१६
अपनी रुचि और विचारधारा	१७
खुद	१८
आत्मतत्व विज्ञान मिल गया	१९
मंजिल की सदृश्यता	२१
दीर्घजीवी बनने का सूत्र	२२
चिंतन के तट पर	२३
चित्त को निखार लो	२५
जीयें निज चेतन से	२७
जीवन की सार्थकता	२८
शाश्वत सुख को निज में पा ले	२९
न कर मूल में भूल	३०
साधना	३१
हूँ मैं कौन ? यहाँ क्यों आया	३२
जो आज है कल न रहेगा	३४
न मैं चुप हूँ न गाता हूँ	३५
प्राणीमात्र का धर्म	३६
हे नाथ ! तू मुझको मिला दे	३७
निज में नित्य निहारुँ	३९
सज्जन सुनो धर्म का सार	४०
एक पूजा ऐसी भी	४१
प्रकृति की प्रकृति	४२
एक और नेक	४३
समर्थ कौन ?	४४
साधना की कसौटी-सहनशीलता	४५
सद्धर्म में लवलीन हों	४६
जीवन की अनिवार्य घटना	४७
विरक्ति की अनुरक्ति	४८
संयत जीवन	४९
लगी है प्रीत	५१
मैं पीड़ित पर पीर से	५२
प्रभु कैसे तुम्हें मनाऊँ मैं	५४
श्री निर्ग्रंथ गुरु स्तवन	५५

श्री अजितनाथ स्तवन

अजितनाथ वसुकर्म विजेता भाव कर्म के हंता हो,
वीतराग सर्वज्ञ हितैषी लोकत्रय भगवंता हो।
तेरा चिन्तन ध्यान मनन गुण स्तव भी अघ को हरता,
तव युग चरण कमल में भगवन् मैं नित निज मस्तक धरता॥१॥

तव गुण गण की स्तुति हे जिन गणधर भी नहीं कर पाते,
इंद्र नरेन्द्र खगेन्द्र महीधर तव पद में नित झुक जाते।
मैं अल्पज्ञ श्रमण जिन शिशु सा कैसे तव गुणगान करूँ,
शब्द कलम लिखती जाती है मैं तव पद का ध्यान करूँ॥२॥

मोक्षमार्ग में दृढ़ कपाट हैं मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान,
अरु कषाय के गड्ढे जिसमें अक्ष विषय अघ कंटक जान।
मोह तमोवृत पंक द्वेष युत क्रोधादि दुर्गम अघ खान,
ऐसे दुर्गम पंथ सुगम हो अजितनाथ का करि गुणगान॥३॥

अजितनाथ मम हृदय सदन में अमित काल तक वास करो,
मैं तुमको अब ना भूलूँगा मेरा भी विश्वास करो।
है विश्वास मुझे ये पक्का तुम ना मुझको छोड़ोगे,
हृदय कमल में बंदी हो तुम कैसे मम दिल तोड़ोगे॥४॥

अजितनाथ जिनदेव भवोदधि मेरी नौका डूब रही,
तुम हो नाविक कुशल लोक में यह चर्चा यहाँ खूब रही।
आप अकारण मित्र सभी के करुणामृत नित बरसाते,
मैं असहाय अबोध दीन शिशु क्यों मुझको अब तरसाते॥५॥

अजितनाथ निज लघु सुत पर भी अब तो कृपादृष्टि कर दो,
नंतकाल का प्यासा हूँ मैं हे पितु धर्म वृष्टि कर दो।

क्या प्यासे चातक को लखकर मेघवृष्टि नहीं करते हैं,
फिर तुम अपने खास पुत्र का रोग क्यों नहीं हरते हैं॥६॥

पारस परस अधम लोहे को स्वर्ण करे जग ने जाना,
तव पद पावन परस चरण रज हरे रोग तन के नाना।
मैंने तुमको ध्यान द्वार से हृदय कमल पर बिठलाया,
हे अजितेश्वर तवाधार बन मेरा चित यूँ इठलाया॥७॥

ज्यों पराग के लोभी षट्पद बिना निमंत्रण आ जाते,
और पपीहे श्याम मेघ लख नृत्य करें औ हरषाते।
वीतरागता का लोभी मैं तव पदाब्ज अलि बन आया,
नहीं मिला आमंत्रण तेरा मेरा ही मन ललचाया॥८॥

हे अजितेश्वर अक्ष विजेता नेता शिवपुर के नामी,
मैं अनुगामी तव शासन का क्यों न बना अब तक स्वामी।
तव शासित ही तव शासन का निश्चित ही बनता शासक,
मैं सेवा कर तव शासन की बनूँ स्वयं का अवभासक॥९॥

इक सामान्य ग्रामपति राजा दुखियों के दुःख हरता है,
खुद भी दुख को सहन करे वो शासित को सुख करता है।
हे अजितेश्वर लोक पति तुम अविकारी अरु हो अविनाश,
फिर तेरा ये खास दास अब रोगी बन क्यों रहे उदास॥१०॥

हे अजितेश्वर विरद आपका सुनकर तव पद में आया,
पतितों को पावन करते तुम यही सुयश जग ने गाया।
गर न मम उद्धार हुआ तो करे जगत तेरी हाँसी,
मैं तो तव पद का अनुरागी पापी हूँ पर विश्वासी॥११॥

हे अजितेश्वर बिन जाने तुम जगत दुःख नित पाता है,
वह निश्चित तुम सा बन जाता जो तव पद में आता है।

गर औषधि ही रोग हरे ना कौन औषधि खायेगा,
भक्त आपका बने न तुमसा क्यों वह शीश झुकायेगा॥१२॥

हे अजितेश्वर तव पद में शत इन्द्र नमन नित करते हैं,
क्षेत्र बटेश्वर में तुम राजित दुःख विश्व का हरते हैं।
मैंने निर्मल भक्ति भाव वश हे जिन तुम्हें पुकारा है,
मुझ अबोध बालक को हे जिन तेरा एक सहारा है॥१३॥

ज्यों माली दिन रात परिश्रम करके चमन खिलाता है,
ज्यों पयोद सूखे मरूथल को पानी नित्य पिलाता है।
मैं याचक हूँ तेरे दर का खाली हाथ न जाऊँगा,
तव पद भक्ति करूँ अहर्निश सिद्धीश्वर बन जाऊँगा॥१४॥

मैं दिनरात करूँ तव चिंतन हे जिन तुम देना वरदान,
रहूँ नित्य पद कमल तुम्हारे ज्यों अलि अब्ज भक्त भगवान।
नाम रटूँ केवल मैं तेरा और चित्त में तेरा ध्यान,
हे अजितेश्वर पद समीप तुम हो मेरे तन का अवसान॥१५॥

हे अजितेश्वर मुझ रोगी के वैद्य अनोखे जग विख्यात,
आप ही हो सर्वस्व हमारे तात मात सुत बंधु भ्रात।
हे संरक्षक हे निर्देशक हे गुरु त्राता प्राणाधार,
मम आतम के हर प्रदेश में दर्शन तेरा हो अविकार॥१६॥

कमल विकासक रवि ज्यों नभ में कुमुद विकासक इंदु है,
सीप विकासक स्वाति बूंद है रत्न विधायक सिंधु है।
जैसे मात-पिता सम्मुख शिशु सर्वशांति सुख पाता है,
त्यों अजितेश्वर मम चकोर चित तुमको नित्य बुलाता है॥१७॥

जो तुव पद दुःख दर्द कहें वे पाते हैं सुख अविनाशी,
निर्धन के घर में भी नवनिधि रहती हैं बनकर दासी।

हे अजितेश्वर तुम पद रज में रहे सदा जो विश्वासी,
भक्त आपमें एकीकृत हो बन जाता शिवपुरवासी॥१८॥

मैं भी हूँ तव वंशज जिनवर सिद्ध स्वभावी अविकारी,
तव चित् में निजचित्त रमाकर बनूँ स्वयं का अधिकारी।
तव पद भक्ति ही अजितेश्वर मुझको सिद्ध बनायेगी,
फिर मुक्ति श्री जिन भक्तों को वरमाला पहनायेगी॥१९॥

मोह रिपु अत्याचारी ये आतंकी बन आता है,
विषय भोग की सुरा पिलाकर पापों में ले जाता है।
अनेकांत अरु स्याद्वाद असि ढाल लिये तुमने जीता,
इसीलिए हे अजितेश्वर ! रिपु तव पद धो धोकर पीता॥२०॥

मम आराध्य इष्ट प्राणेश्वर अंतस की आवाज सुनो,
न स्वर है न कोई सरगम, व्यथित हृदय का साज सुनो।
हे अजितेश्वर तव चरणों में, नमन अनंतों बार करें,
वसुनंदी तेरे पद बसता, शीघ्र मेरा उद्धार करें॥२१॥

क्या बाधा बाधक बन पायेगी

सम्यक् पथ पर चलें निरंतर-
जीवन मंजिल भी मिल जायेगी।
जिसको जीने की चाह नहीं-
उसको क्या मौत डरायेगी?
तट के सब संगी साथी भी-
जिसने खुद ही यूँ छोड़ दिये।
नौका के सारे बंधन भी-
जिसने तड़-तड़ तोड़ दिये।
उस अदम-साहसी मृत्यु जयी से।
लहर स्वयं कतरायेगी।
जिसको जीने की चाह नहीं-
उसको क्या मौत डरायेगी?
इच्छाओं की झोली ले-
ना कभी किसी से कुछ मांगा।
औरों के दिल दर्पण में जो,
कभी न पल भर को झांका॥
जो स्वयं दिवेश है-दिव्य ज्योति-
जुगनू क्या राह दिखायेगी।

जिसको जीने की चाह नहीं-
उसको क्या मौत डरायेगी?
काँटों में जीकर जिसने-
फूलों को हँसना सिखलाया।
तामस को पीकर के उसने-
किरणों को मार्ग दिखलाया।
उस आत्म बिहारी साधक को-
क्या बाधा बाधक बन पायेगी?
जिसको जीने की चाह नहीं-
उसको क्या मौत डरायेगी?
निज वैभव का उपभोगी बन,
छोड़ी जग की सब सुविधाऐं।
अपनी ही अग्नि परीक्षा हित,
ओढ़ी जग की सब दुविधाऐं।
निर्भीक तपस्वी योगी उसको,
भव माया क्या भरमायेगी।।
जिसको जीने की चाह नहीं-
उसको क्या मौत डरायेगी?

कारवाँ गुजर गया गुवार देखते रहे

कहना है भक्ति से,
सहना है शक्ति से।

मिल जायेगी मुक्ति भी रत्नत्रय की युक्ति से।
और हम अनादि से संसार देखते रहे।
कारवाँ गुजर गया गुवार देखते रहे॥

पौ भी फटी नहीं कि हाय ! सूर्य ढल गया,
दो कदम भी न चला कि पैर ही फिसल गया।
बूँद भाप बन गई, हिमगिरि भी गल गया,
आँख भी न खुल सकी औ प्राण भी निकल गया॥

दर्द पुष्प बन गये अश्क मेघ तन गये,
और योगी गुप्तिधार मोक्ष कर्म हन गये।
और हम कसे-कसे मोह कीच में फँसे,
जिन्दगी की मौत का ये द्वार देखते रहे।
कारवाँ गुजर गया गुवार देखते रहे॥

कली पुष्प न बन सकी और पात झर गये,
अरमान ये मन में संजोये, स्वप्न में ही मर गये।
और नभ में शक धनु गर्भ में बिखर गये,
जो इधर भी आ रहे थे, वे सब ही उधर गये।

और फिर एक दिन, ऐसी कुछ हवा चली,
लुट गई थी कली कली, घुट रही थी गली गली
और हम खड़े-खड़े मोह पंक में पड़े,
जीवन के चढ़ाव का उतार देखते रहे।
कारवाँ गुजर गया गुवार देखते रहे॥

हाथ में चिराग लिये उजास देने मैं चला,
मार्ग में ही कर्म ने इस तरह मुझे छला।
आश का विकास भी दिख रहा था जो भला,
मृत्यु की आवाज सुन वो बर्फ सा गला॥

हो न सका कुछ मगर भूल गया मैं डगर,
जा रहा था जो उधर, पहुँच गया कब किधर।
और हम डरे-डरे नीर नयन में भरे,
भावनाओं का सुखद उभार देखते रहे।
कारवाँ गुजर गया गुवार देखते रहे॥

राह बदल - हरा बन

तीव्र वेग से चलती हुई गाड़ी को यकायक रोकना,
असंभव हो यदि उसकी गति को टोकना।
तो दिशा परिवर्तन भी साधन एक खास है,
दुर्घटना से बचने का सफल प्रयास है॥
नहिं रोक सकते यदि चेतन में कर्मों का आना,
तो श्रेष्ठ होगा अपने उपयोग का बदल जाना।
जो नदी रूप लेती चण्डी संहारक वह हो जाती है,
यदि धार बदल दें उसकी भी फिर वही सृजक बन जाती है।
अहो मीत बस उसी तरह जो राह बदल कर चलता है,
उसके जीवन में हरा-भरा हरियाली का गुल खिलता है॥

वही मृत्यु की मृत्यु करके

जिसे लालसा जीने की ना, नहीं मृत्यु का डर है।
वही मृत्यु की मृत्यु करके, बनता नित्य अमर है॥
अग्नि नहीं जलाती उसको, नहीं गलाता हिमगिरि भी,
नहीं शस्त्र से खण्डित होती, नहीं डुबाती सुरसरि भी।
रहे निशंक, निःकांक्ष, निराकुल रहता सदा निडर है,
वही मृत्यु की मृत्यु करके, बनता नित्य अमर है।
सुर नर खग पशु और नारकी उसे मार नहीं सकते,
मंदिर, मस्जिद, संत-मौलवी उसे तार नहीं सकते।
दृढ़ विश्वासी, अक्षविजेता चुनता स्वस्थ डगर है,
वही मृत्यु की मृत्यु करके, बनता नित्य अमर है।
ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक में जिसका नहीं ठिकाना,
सर्व कर्म से रहित अवस्था जिसको निश्चित पाना।
निश्चय मोक्ष मार्ग का राही, होता नित्य अजर है,
वही मृत्यु की मृत्यु करके, बनता नित्य अमर है।
पाप-पुण्य की दोनों बेड़ी जिसने निज कर काटी,
कर्मों की सम्पूर्ण प्रकृति भी जिसने चुन-चुन छाँटी।
स्व-पर द्रव्य का जीता जिसने मन का मुख्य समर है,
वही मृत्यु की मृत्यु करके, बनता नित्य अमर है।

लख चौरासी योनि मांहि, चारों गति में घूमा,
पंच परावर्तन कर जिसने, हर भव दुःख को चूमा।
दर-दर की दरकार छोड़ जो, पावे मुक्ति घर है,
वही मृत्यु की मृत्यु करके, बनता नित्य अमर है।
क्षायिक सम्यक् अश्व सलौना, क्षपक श्रेणी का रथ है,
क्षीण मोह हो बना केवली, पाया सिद्धि पथ है।
शुक्ल ध्यान का मौर पहनकर बना मुक्ति का वर है,
वही मृत्यु की मृत्यु करके, बनता नित्य अमर है।

है सुख भरा संसार मेरा

है सुख भरा संसार मेरा,
हो रहा है चेतना में, आनंद का सुरभित सवेरा॥
है सुख भरा संसार मेरा॥

झर रहा इससे निरंतर सुखद शीतल नीर निर्मल।
धुल गया है पीर का सम्पूर्ण दुःख वा मोह पंकिल॥
चेतना के सद्गुणों का, है सगा परिवार मेरा...
है सुख भरा संसार मेरा॥१॥

संगीत मधुरिम चेतना का, गूँजता है शुभ्र नभ में,
सफलता का रूप भी तो, दिख रहा है आज पग में॥
चेतना का मूल्य सब कुछ कर रहा प्रतिपल बसेरा।
है सुख भरा संसार मेरा॥२॥

आत्मा का ज्ञान सारा, चित्त को रोशन करेगा।
सद्ज्ञान का हर एक दीपक, तमस अंतस का हरेगा॥
विश्व का हर कण हमेशा कर रहा जयकार मेरा...
है सुख भरा संसार मेरा॥३॥

आज शाश्वत निज गुणों का मैं निलय ही बन गया हूँ।
सिद्धत्व का वैभव लुटाने मेरु सम मैं तन गया हूँ॥
सिद्ध शुद्ध ये आत्मा ही, यह सुभग गुणकार मेरा...
है सुख भरा संसार मेरा॥४॥

अपनी रुचि और विचारधारा

तुम इतना ज्यादा क्यों कमाते हो?
फिर उतना ही कम क्यों खाते हो?

जितना अच्छा मकान बनाते हो,
उतना ही कम उसमें रह पाते हो।

क्योंकि मनोनुकूल मकान बनाने में
निकल जाती है
जिंदगी उसे सजाने में

तुम जिन बेटों और पोतों के लिए मकान बना रहे हो,
समझो उनको बेवजह सता रहे हो;

क्योंकि तुम्हारे बनाये मकान उन्हें बिल्कुल-
भी पसंद नहीं आयेंगे;
वे उन्हें तुड़वाकर
नए मकान बनाऐंगे
क्या तुम्हें अपने बाप-दादा के बनाये-
मकान पसंद आये थे;
क्या उनकी पसंद को तुम निभा पाए थे

यदि आपको नहीं आये तो बदलते दौर में-
इस पाश्चात्य संस्कृति की अंधी दौड़ में
तुम्हारी पसंद को वे अपनी रुचि कैसे बनाऐंगे।
तुम्हारी विचारधारा पर नई धारा लगाऐंगे॥

खुद

हर किसी का चश्मा तुम्हें ठीक नहीं लगेगा,
जबरदस्ती लगाओ तो सही नहीं दिखेगा,
हर किसी के कपड़े तुम्हारे शरीर पर न फबेंगे,
पहन भी लिए तो संभव है, आप जोकर से दिखेंगे।

हर किसी के जूते तुम्हारे पैर में सही न आयेंगे,
अगर पहन लिए तो ढीले होंगे या पैर को काट खायेंगे,
बिना अपनी आँख जाँच कराये, कोई भी चश्मा बेकार है,
बिना नाप के कपड़े शरीर का भार हैं।

खुद के पाँव का नाप दिये बिना-जूता भी असार है,
खुद वाहन चलाना सीखे बिना वाहन निस्सार है,
इसी तरह उधार का प्रश्न ज्ञानी नहीं बना सकता,
और अधूरा उत्तर भी आत्मध्यानी नहीं बना सकता।
कागज के फूलों को पानी देना बेकार है।
जिज्ञासा रूपी पौधों के लिए चेतना आधार है॥
अतः स्वयं को स्वयं में खोजना ही सार है।
मुक्ति पाने का प्रयास खुद का खुद से प्यार है॥

आत्मतत्व विज्ञान मिल गया

पूर्व कर्म के संक्षय हेतु, उपसर्गों का वरदान मिल गया।
शाश्वत सुख को देने वाला, आत्म तत्व विज्ञान मिल गया॥
धन्य पुष्प वे हैं गुलाब के, काँटो मध्य सदा हँसते हैं,
उन्हें धन्य है जो हर क्षण ही, लहरों पर निर्भय बसते हैं।
अग्नि शिखा में शीतल चित्त का, मुझे आज इंसान मिल गया॥
शाश्वत सुख...

समता से पीड़ा को सहकर, पूर्व कर्म, ऋण चुका रहे हैं,
महा भयंकर कष्ट वेदना, निज चरणों जो झुका रहे हैं॥
गम का सागर पीकर के नित, मुस्काये वह प्राण मिल गया॥
शाश्वत सुख...

साँसें तो प्रतिक्षण चलती हैं, जैसे चाहो उन्हें चलाओ,
समता और विषमता के तुम, चाहो जैसे गीत सुनाओ।
आत्म सिंधु के गहरे जल में, निर्वच आतम ध्यान मिल गया॥
शाश्वत सुख...

मृत्यु की पावन बेला में, क्षमा दान कर समता धारें।
इष्ट प्रभु का ध्यान निरंतर, निज में निज को नित्य निहारें।
अपना निर्मल शुद्ध स्वभाविक, निज चिन्मय रसपान मिल गया॥
शाश्वत सुख...

द्रव्य, भाव अरु नो कर्मों के, बंधन तज मैं मुक्ति पा लूँ,
घाति अघाति सकल विधि नशि, नित्य निरंजन रूप संभालूँ।
शुद्धातम की निज अनुभूति, पाने को गुणगान मिल गया॥
शाश्वत सुख...

राग-द्वेष मोहादि तजकर, मृत्यु का अभिनंदन कर ले,
दु:ख पूरित अपनी झोली में, शम सम धर्म, दया गुण भर ले।
आत्मखेत की फसल उगाने, हमें एक खलिहान मिल गया॥
शाश्वत सुख...

ना भविष्य के सपने देखें, ना अतीत का शोक करें,
वर्तमान के हर एक क्षण का, हम सम्यक् उपभोग करें।
स्वयं परीक्षक, खुद ही प्रार्थी, ऐसा अब इतिहास मिल गया॥
शाश्वत सुख...

शाश्वत सुख को देने वाला, आत्म-तत्व विज्ञान मिल गया॥

मंजिल की सदृश्यता

''राहें सबकी अलग-अलग हैं,
मंजिल सबकी एक है।
वैचारिक भ्रांति वश,
पाते लक्ष्य अनेक हैं॥''
''परम पुरुष वह सिद्ध, यति, प्रभु,
ईश्वर, ब्रह्मा, शिव परमातम।
तीर्थंकर, जिन, सौगत, शंकर,
बुद्ध, अर्हंत वा शुद्धातम॥''
''नाम भिन्न पर भाव एक है,
पूजा, भक्ति, अर्चन का।
भेष भिन्न पर त्याग एक है,
संयम और विसर्जन का॥''
''क्रियाऐं गर पृथक्-पृथक् हैं,
चित्त भूमि यदि निर्मल है।
अक्ष कषाय विषय भाव तज,
बनता वह उज्ज्वल है॥''
''अपना स्वत्व-स्वत्व में खोजें,
पर का पूर्ण करें हम त्याग।
तभी फलित होगा जीवन में,
संयम, जप, तप और विराग॥''

दीर्घजीवी बनने का सूत्र

गर्म लोहा, गर्म लोहे को कभी न काटता।
और ठण्डे लोहे को भी नहीं वह छाँटता॥
किंतु ठण्डा लोहा काम दोनों कर सकता है।
गर्म हो या ठण्डा लोहा काट छाँट सकता है॥
एक बात तो इससे सिद्ध भी कर सकते हैं।
गर्म से ज्यादा ठण्डे का बल नकार नहीं सकते हैं॥
दीर्घ जीवन खाद्य पदार्थों को जब देना होता है।
गर्मी से उन्हें दूर कर, ठण्डी में रखना होता है॥
क्योंकि गर्मी सड़ाती सबको, ठंडक ताजगी देती है।
अन्य पदार्थों को वह लंबी आयु प्रदान कर देती है॥
सभी खाद्यान्न फूल फल मेवे को सुरक्षित करते हैं।
विशेष पदार्थों औषधियों को भी, शीत गृह में रखते हैं॥
सार समझ में आया है कुछ, लंबी आयु पाने का।
क्रोध छोड़ प्रयास करो तुम, क्षमा भाव अपनाने का॥

चिंतन के तट पर

किसको नमन करूँ मैं भगवन किसको नमन करूँ मैं।
तुमको या तुव नाम रूप या गुण निधि को नमन करूँ मैं॥

किसको नमन करूँ मैं भगवन

शब्द हमारे बौने शिशु तुम,

मौन मेरु सम ऊँचे।

हम चंचल इक बिन्दु नीर की,

तुम अर्णव समूचे ही॥

कैसे तुमको पा जाऊँ,

कैसे वरण करूँ मैं।

किसको नमन करूँ मैं भगवन...

चतुरंगुल यह हृदय हमारा,

कैसे तुमको बांधूँ।

तुम वीचि हो महोदधि की,

कैसे तुमको साधूँ॥

अपना शीश, ईश हे स्वामी,

किसके चरण धरूँ।

किसको नमन करूँ मैं भगवन...

राग-द्वेष अरु कर्म रहित तुम,

शुद्ध, ईश, परमात्मा।
शक्ति रूप से मैं भी निश्चित,
तुम सम ही सिद्धात्मा।
निज आतम या जिन आतम में,
किसमें रमण करूँ मैं।
किसको नमन करूँ मैं भगवन...

चित्त को निखार लो

''अब आपको खुद आप में, आप ही सुधार लो
क्या पता कब मौत का यम दूत आये,
प्राण का अतिथि यहाँ से रूठ जाये।
क्या पता कब शाख से कली टूट जाये,
चिरकाल तक के लिए बंधन छूट जाये।
दूसरों की रोशनी से तेरा होगा कुछ नहीं,
आप ही खुद चित्त में, दीप अपना वार लो॥ अब आपको॥

''एक पल में क्या घटे किसको पता,
क्या बने और क्या मिटे किसको पता।
जिन्दगी तो शक धनु सम है विनश्वर,
कब वृष्टि हो या धूप हो किसको पता।
मुँह छिपाये क्यों पड़े हो आज तक,
इसलिए तुम चित्त से घूंघट जरा उतार लो॥ अब आपको॥

''दिग्भ्रांत हो जीवन जिया है आज तक,
अमृत समझकर जहर ही तूने पिया है आज तक।
पंचाक्षकी ये वासनायें तुझको भ्रमाती हैं यहाँ,
इन्हीं का सेवन किया है देख तूने आज तक।
पाप पंक छोड़ मोड़ चेतना की धार को,
आज तप की अग्नि में तुम चित्त को निखार लो॥ अब आपको॥

''पहाड़ के ऊँचे शिखर पर दीप कैसा जल रहा,
आयु का यह पाहुना जिन्दगी को छल रहा।

मौत की आँधी चलेगी दीप बच ना पायेगा,
यमराज निष्ठुर इस तरह दिन-रात सबको दल रहा।
घेर लेगी देख तुझको मौत की काली निशा,
दीप के प्रकाश में शुभ मार्ग को निहार लो॥ अब आपको॥

''सम्यक्त्व बोध चरित्र के इस पवित्र प्रकाश में,
आत्मा के निस्सीम निष्कलंक आकाश में।
राग-द्वेष मोह छोड़, अंधकार नाश कर,
सिद्धत्व को तू प्राप्त कर जैन के इतिहास में।
पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों को त्यागकर,
स्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव का आधार लो॥
अब आपको खुद आप में आप ही सुधार लो।

जीयें निज चेतन से

तज अतीत की यादें सारी, त्याग अनागत मन से।
वर्तमान को वर्धमान बन, 'जीयें निज चेतन से'॥
हम अनादि से भूतकाल के, मुर्दों के संग जीते।
या भविष्य के मधुर स्वप्न का, संमोहक रस पीते॥
जो है सम्मुख उसे ग्रहण कर, बनें धनी इस धन से।
वर्तमान को वर्धमान बन, 'जीयें निज चेतन से'॥
हमको अपनी रुग्ण दशा का, क्यों कर भान नहीं है,
प्रेम पयोनिधि के अधरों पर, क्यों मुस्कान नहीं है।
चिर पोषित विद्वेष व्याधि को, करें दूर जन-जन से।
वर्तमान को वर्धमान बन, 'जीयें निज चेतन से'॥
शुभ अवसर की आश लगाये, हमने समय गंवाया।
किंतु प्रतीक्षा के नयनों में, कोई स्वजन ना आया॥
मुक्त गगन का पक्षी निकले, मिलने मुक्ति वधू से।
वर्तमान को वर्धमान बन, 'जीयें निज चेतन से॥
भूतकाल तो राह चिह्नवत्, हमसे पीछे छूटा।
और अनागत दिखे सामने, रहता सदा अछूता॥
संयत पग वृष पथ में रख अब, छूटें पुर-परिजन से।
वर्तमान को वर्धमान बन, जीयें निज चेतन से।
सुंदर, रम्य अतीत चमन का, छूटा नित पतझड़ सा।
और अनागत गगन पुष्प सम, खिला नहीं पुष्पों सा॥
सौरभ सेवन करले चेतन, अपने चित्त सुमन से।
वर्तमान को वर्धमान बन, 'जीयें निज चेतन से॥

जीवन की सार्थकता

हर कंकर शंकर बन सकता है,
किंतु बनता नहीं है,
हर दीपक जल तम हर सकता है
किंतु हरता नहीं है,
हर अक्षर स्तुति बन सकते हैं
किंतु बनते नहीं हैं,
हर मिट्टी कलशा बन सकती है
किंतु बनती नहीं है,
हर पुष्प प्रभु चरणों में चढ़,
हर मनुज नेक कामों में पड़,
जीवन को सार्थक कर सकता
किंतु करता नहीं है,
इसी तरह हर आतम में परमातम छुपकर बैठा है,
कोई वीर आकर खोजेगा इसी आस में ऐंठा है।
सफल प्रयासों से आतम के वह भी प्रगटित हो सकता है,
किन्तु विफल कार्यों को कर हम प्रगटित करते नहीं हैं॥
मन्दिर कितना भी सुन्दर हो,
गर ईश्वर का वास नहीं है।
सुन्दर रूप निरोगी काया,
बिन संयम सब राख कही है।
जीवन सार्थक हो सकता है,
यदि विश्वास सही है॥

शाश्वत सुख को निज में पा ले

चेतन निज में चित्त रमा ले,
शाश्वत सुख को निज में पा ले।
ये मिट्टी के बने घरोंदे, कुछ हैं सीधे कुछ है औंधे,
दीवालें चिन छत है डाली, निशदिन करते हैं रखवाली।
यही अनादि की काया चेतन! इससे चित्त हटा ले।
शाश्वत सुख को निज में पा ले॥
बाहर जो कुछ दीख रहा है, बाहर में जो सीख रहा है,
बहिरंग को बाह्य समझकर, त्याग उसे जंजाल जानकर।
निज की निधि निज में है चेतन, क्यों ना उसे संभाले।
शाश्वत सुख को निज में पा ले॥
कर्ता-कर्म, करण पर छोड़ो, अष्टकर्म के बंधन तोड़ो,
धर्म-ध्यान की चादर ओढ़ो, स्वातम को स्वातम से जोड़ो।
ज्ञान ध्यान तप की अग्नि में, कर्म कपूर जला ले।
शाश्वत सुख को निज में पा ले॥

न कर मूल में भूल

''जो मूल की उपेक्षा कर फूल चाहते हैं,
वे प्रकृति के उसूलों को भूल जाते हैं।

मूल को छोड़ फूल का सम्पोषण-भूल है,
भविष्य के लिए दर्द भरा शूल है।
मूल के बिना चूल नहीं होती,
मूल बिना कोई दशा अनुकूल नहीं होती।

जो उन्मत्त हो मूल को भूलते हैं,
वे नंत काल तक भव तरु पर झूलते हैं।
जीवन में बात को तूल न दो,
सेवो उसी को मूल है जो,
तब प्रतिकूल भी अनुकूल होगा,
जीवन का मूल भी तुम्हें कबूल होगा।''

साधना

लोकत्रय में उच्चासीन।

सत्यधर्म आधार तुही है, योगी को शिवद्वार तुही है।
कर्म कलंक नशाती जग में, रहें आत्म लवलीन॥
लोकत्रय में उच्चासीन॥

जीवन को जो महान बना दे, या नर को भगवान बना दे।
बंधन मुक्त करे आतम को, कर्म रहित स्वाधीन।
लोकत्रय में उच्चासीन॥

दीपशिखा सम तम हारक हो, चिंतामणि सम गुणधारक हो।
निज आतम को शिव कारक हो, धारें तुम्हें प्रवीन॥
लोकत्रय में उच्चासीन॥

तुमको ध्याते हैं जो योगी कर देती तू नित्य निरोगी।
भोग छोड़कर आतम ध्याले मत कर चित्त मलीन॥
लोकत्रय में उच्चासीन॥

जीवन की सम्पूर्ण सफलता, छोड़ अनादि की सकल विफलता।
रत्नत्रय को धारण करके रहो आत्म नित लीन॥
लोकत्रय में उच्चासीन॥

हूँ मैं कौन ? यहाँ क्यों आया

हूँ मैं कौन ? यहाँ क्यों आया।
मैं हूँ कौन ? कहाँ से आया।
बहुत बड़ा उपदेशक बनकर भी निज को मैं जान न पाया।
हूँ मैं...../
धर्म छोड़ पापों में डूबा, पुण्य कार्य करना नहीं सीखा।
विषयों में ही रमण किया नित, सत्यमार्ग नहीं अब तक दीखा।
सुख के सारे सपने देखे, दुख का पंथ न मैं तज पाया।
हूँ मैं.....

निज कर्त्तव्य भुलाकर मैंने, नितदूजों की निंदा कीनी,
तन, धन, जन में लीन रहा नित, कबहुँ न आतम की सुध लीनी।
अधिकारी बनने की खातिर, अविकारी मैं बन न पाया।
हूँ मैं.....

निज पर के सब दोष भुलाकर आओ हम गुण चर्चा कर लें।
आतम को शुद्धात्म बनाने, परमातम की अर्चा कर लें।
सिद्ध समान रूप चेतन का, क्यों अब तक न मैं लख पाया।
हूँ मैं.....

कंचन छोड़ काँच को पकड़ा, मोह जाल में ऐसा जकड़ा।
निज स्वभाव को भूल विसरि कर, पर द्रव्यों को पाकर अकड़ा।
जीवन भर मैं रहा अधर्मी, क्यों न धर्म मार्ग अपनाया।
हूँ मैं.....

गुणीजनों की निंदा करके, कीना पाप कर्म का बंधन,
इसीलिये तो आज मचा है मेरे अंतपुर में क्रंदन।

गुरुपद चंदन कैसे पाऊँ नंदन ना मैं तो बन पाया।।
हूँ मैं.....

काश मिटा पाता मैं निज का मिथ्यात्रयी का घोर अंधेरा।
होता उदय अमर वृष रवि का, चेतन पाता नित्य सवेरा।
नादि काल से चित्तभूमि को, मैंने पंकिल सदा बनाया।।
हूँ मैं.....

काश तोड़ पाता मैं अब तक, आश्रव कर्म बंध का नाता।
और जान पाता मैं निज को बनकर निज का भाग्यविधाता।।
किन्तु मोह ने अब तक मुझको विषयभोग का गरल पिलाया।
हूँ मैं.....

पल-पल बीत रहा जीवन का, हँसने रोने या खाने में,
मोह मेघ में छिपा ज्ञान रवि, देर करो न प्रगटाने में,
अंधकार में भान न होता, कौन है अपना कौन पराया।
हूँ मैं.....

अपने भले बुरे की मैंने निंदा गर्हा कभी ना कीनी।
पर द्रव्यों में लीन रहा नित, निज आतम की सुध ना लीनी,
सच्चे सुख का स्वप्न न देखा, दुःख ही दुःख मैंने अपनाया।।
हूँ मैं.....

जो आज है कल न रहेगा

जो आज है कल न रहेगा,
आज के वृक्ष का बीज बीता कल है,
आने वाले कल का बीज भी तो आज है।
इसलिये यह निश्चित है जो आज, बीता कल बनेगा,
और आज जिस पर नाज है वह आज भी आज न रहेगा॥
होने न होने का ये क्रम हमेशा ही चलेगा,
जो आज है कल न रहेगा।
हम आज हैं, कल थे, रहेंगे यह भ्रम कब तक चलेगा,
काल का चक्र काल कविलित करता हुआ सबको दलेगा,
कल का बीज आज वृक्ष बना है, यही कल बनकर फलेगा॥
जो आज है कल न रहेगा।
द्रव्य दृष्टि नित्य है सब, पर्याय कहती अनित्य है सब।
गुण ध्रौव्य शाश्वत रूप मानो, पर्याय क्षणिक है सत्य मानो,
सदापेक्षा सत्यसत् है असदापेक्षा असत्य सत् है।
सत्य है वो सत्य ही था सत्य तो सत् ही रहेगा॥
जो आज है कल न रहेगा।
चेतना है सत्य शाश्वत, देह भंगुर सत्य है,
देह-देही एक कहना सबसे बड़ा असत्य है।
देह रूपी गेह से तू नेह ना जब तक तजेगा,
देह देवालय विराजित देही न तुझको मिलेगा॥
जो आज है कल न रहेगा।

न चुप हूँ न गाता हूँ

न चुभता हूँ न भाता हूँ न मैं चुप हूँ न गाता हूँ।

न सुनता हूँ सुनाता हूँ आप बीती बताता हूँ॥
वासना की पिशाची ने शावक वृष कुचल डाला,
तृष्णा की इस नागिन ने पय का विष बना डाला।
बिखरे नीड़ के तिनके, हवा में उड़ रहे उनके,
इन सभी को तजकर, तब मैं गुन गुनाता हूँ॥
न चुभता हूँ न.....हूँ॥

क्रोध मद मोह लालच ने बनाया मनुज को अंधा,
खुदा तू खुद ही बन जाता पर न बन सका बंदा।
ज्वाला क्रोध की देखी, तो माया मोहिनी लेखी।
सत्ता शांति की पाने, क्यों निज-पर सताता हूँ॥
न चुभता हूँ न.....हूँ॥

इरादे नेक कर ले तू, तो पूरे होंगे सब सपने,
मन में है घृणा तेरे, अपने भी न हों अपने।
क्षमा करुणा मधुर वाणी, सुखी होगा तो हर प्राणी,
यही है उपदेश भगवन् का, वही तुमको सुनाता हूँ॥
न चुभता हूँ न.....हूँ॥

अंधेरे में भटकता क्यों, जला ले दीप तू अपना,
अंधेरे में तो सपना भी, भासता है सदा अपना।
सपने नेक देखे हैं न अपने एक देखे हैं,
इसी से तो आज तुमको, निज कहकर बुलाता हूँ॥
न चुभता हूँ न.....हूँ॥

किया है बहुत कुछ अब तक, नहीं कुछ सत्य फल पाया।
चला था मैं जहाँ से तब, आज भी वहीं खड़ा पाया।
नहीं कथनी से कुछ मिलता, नहीं कथनी से गुल खिलता।
इसी से तो यहाँ बैठा, चैन से वीणा बजाता हूँ।।
न चुभता हूँ न.....हूँ।।

दुःखी जो गैर को देखा तो, चमक चेहरे पे आई थी।
खुद के दुःख कल्पना से, आँख भर-भर के आई थी।
अपना गैर को माना या गैर अपने को ही जाना,
आज न गैर निज कोई, इसी से मुस्कराता हूँ।।

न चुभता हूँ न भाता हूँ न मैं चूप हूँ न गाता हूँ।
न सुनता हूँ सुनाता हूँ आप बीती बताता हूँ।।

प्राणीमात्र का धर्म

सत् श्रद्धा से रहित मनुज तो, धर्मी है न दानी है,
न सत्कर्मी न शिवशर्मी, न गुणवान न ज्ञानी है।
ऐसा नर तो वसुधा तल पर, एक मात्र बस भार है।
ऐसा जीवन जीने वाला लहे न शिव का द्वार है॥१॥

शुभ शक्ति के रहने पर भी न उपकार किया जिसने,
धन-सम्पत्ति पर्याप्त रही पर नहीं दान दीना जिसने।
करुण आर्त्त क्रंदन बंधु का द्रवित हुआ न हृदय जिसका।
सत्कार्य और उपकार किये बिन व्यर्थ रहा जीना उसका॥२॥

निज को पर को जान न पाया भूला पर निज नियति।
पर में लीन रहा वो निशदिन कैसे कर समता प्रगति॥
कौन कहाँ का वासी हूँ मैं कौन देव का विश्वासी।
धर्मदास जो बन जाता है तब लक्ष्मी बनती दासी॥३॥

प्राणीमात्र की सेवा करना सबसे बड़ा धर्म जग में।
जो पर के दुःख दर्द मिटा दे नहीं विघ्न आते मग में।
न्यायार्जित निज सम्पत्ति का वृष क्षेम दान जो न करता।
करले चाहे श्रम कितना भी कभी तिजोरी न भरता॥४॥

दुर्जन की कटु वाणी सुनकर न मन में क्षोभ कभी आवे।
इष्ट-अनिष्ट वस्तु संगम में, समता भाव सदा भावै।
करूँ नित्य दर्शन भगवन के कर्म कालिमा धोने को।
उनके चरण अहर्निश पूजूँ उन जैसा ही होने को॥५॥

हे नाथ ! तू मुझको मिला दे

मम शुद्ध शाश्वत रूप में, हे नाथ तू मुझको मिला दे।
देकर मुझे सद्ज्ञान रश्मि, चित्त की कलिका खिला दे॥
जहाँ अमाँ की घोर काली रात का आना न होता।
दिवस नायक सूर्य का वहाँ से कभी जाना न होता।
सत्य का आलोक दाता, तू रवि मुझको बना दे॥
मम शुद्ध शाश्वत.....

हे नाथ निष्ठा का सुदीपक, भक्ति का आलोक भर दे।
लोक का तम नाश करके, चित्त को वृषभान कर दे॥
सत्य श्रद्धा ज्ञान का सद्दीप मम उर में जला दे॥
मम शुद्ध शाश्वत.....

वासना की धार विषमय जहाँ कभी बहती नहीं है,
पाप की दुर्गंध जहाँ पर, चेतना सहती नहीं है।
राग की हंता विरागी चेतना में ये कला दे॥
मम शुद्ध शाश्वत.....

क्रोध मान लोभ मोह छल कपट का मन बना हो।
अक्ष के भोगों में अंधा चित्त गर अघ से सना हो।
तो बोध के पीयूष से हे नाथ चित्त मेरा धुला दे॥
मम शुद्ध शाश्वत.....

क्रूरता इस चित्त की हे नाथ तू सब जानता है।
भावी बड़ी बलवान होती ये चित्त क्यों नहीं मानता है।
पंकिल हृदय में नाथ मेरे, अम्बुज दया का अब खिला दे।
मम शुद्ध शाश्वत.....

सद्बोध के युग्मित दृगों से, देखता मैं विश्व सारा।
है नहीं यहाँ नित्य कुछ भी, देखता परिणाम सारा॥
चेतना की नित्यता का भान तू मुझको करा दे॥
मम शुद्ध शाश्वत.....

निज में नित्य निहारुँ

मैं निज शुद्धचिदातम अपना निज में नित्य निहारुँ।
तबलों पर के द्वंद-फंद तज, हे जिन तोय पुकारुँ॥

प्रलय काल की आँधी जहाँ पर नहीं कभी भी चलती।
जहाँ क्रूर कर्मों की भी तो दाल कभी ना गलती।
मलती है जहाँ हाथ विधि भी, उसको मैं संहारुँ॥
निज में नित्य निहारुँ॥१॥

जहाँ निष्ठा भक्ति का झरना, श्रद्धा युत हो बहता।
सत्य समर्पण का प्रवाह नित, भाव समर्पित कहता।
रहता है नित नीर विनय का उसमें चित्त पखारुँ।
निज में नित्य निहारुँ॥२॥

विश्व विजेता कामदेव ने वामाओं को जीता।
वामी दृष्टि देखकर जिसने किया मनुज को रीता।
पीता है जो शक्ति धर्म की उसी मदन को मारुँ॥
निज में नित्य निहारुँ॥३॥

सज्जन सुनो धर्म का सार

सज्जन सुनो धर्म का सार।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण ही मोक्ष मार्ग आधार॥

जिनेन्द्र दर्शन पूजन अर्चन, परमेष्ठी को कर नित वंदन।
रत्नदीप जो जगमग करता, नीराजन नित उतार॥
सज्जन सुनो धर्म का सार॥१॥

निर्ग्रंथ गुरु की कर नित सेवा, नहिं दिगम्बर सा गुरु देवा।
आहारदान और वैय्यावृत्ति नित कर जन्म सुधार॥
सज्जन सुनो धर्म का सार॥२॥

दया धर्म का पालन कर ले, करुणा भाव हृदय में धर ले।
जीव मात्र की रक्षा करके, होजा भव से पार॥
सज्जन सुनो धर्म का सार॥३॥

सुन लो जिनवाणी का वाचन, सोच समझ कर-करले पाचन।
याचन भाव छोड़कर वंदे, कर संयम स्वीकार॥
सज्जन सुनो धर्म का सार॥४॥

व्रत तप शील ध्यान अरु संयम, राग-द्वेष तज हो जा निर्मम।
इन्द्रिय रोध ढाल असि भक्ति, करो कर्म संहार॥
सज्जन सुनो धर्म का सार॥५॥

क्षमाभाव धरि आतम ध्याना-श्रेष्ठ समाधि को पा जाना।
निर्द्वन्दी हो आत्मलीन तव, खुले मुक्ति के द्वार॥
सज्जन सुनो धर्म का सार॥६॥

एक पूजा ऐसी भी

बहुत हो चुकी पाषाण के भगवानों की पूजा
अब जीवंत इंसानों की पूजा भी जरूरी है।

पाषाण की मूर्ति को एक दिन स्वप्न में-
मैंने बोलते देखा और सुना,
मैंने उन शब्दों को अंतर में गुना-और चुना-
मूर्ति यूँ कह रही थी-

मानो धर्म की गंगा बह रही थी-
पहले उन्हें पूजो, जिन्होंने मुझे पूज्य बनाया,
पहले उसे सिर झुकाओ, जिसको कभी-
मैंने सिर झुकाया।

पहले उन हाथों को चूमो, जिन्होंने मुझे तराशा है,
जिसके जीवन में हर पत्थर को-
भगवान बन जाने की आशा है।

उस श्रमिक का करो वंदन,
जिसने मुझ पर लगाया था चंदन।
उस खान को भी दे दो धन्यवाद,
जिसने सुनी है आज तक सबकी फरियाद।

खुद गर्मी सर्दी वर्षा को सहकर समता धरती है,
अनेक बेघरों को भी घर बार, दरबार करती है।
अतः बहुत हो चुकी पाषाण के भगवान की पूजा,
अब जीवंत इंसानों की पूजा भी जरूरी है।

प्रकृति की प्रकृति

''जिन, सिद्ध, साधु, धर्म संग ही कर रहा हूँ मैं बसेरा।''
है सुख भरा संसार मेरा॥
महासिंधु या गंभीर गर्जन, घोष अरु है नाद इसमें,
मूक प्राणों संग में भी पल रहा आह्लाद इसमें।
सृष्टि के प्रत्येक अणु में दिख रहा है प्यार मेरा,
है सुख भरा संसार मेरा॥१॥

प्रकृति का रूप लख ये प्राकृतिक ही हो गया है,
विकृति की कालिमा को पूर्णतः ये धो गया है।
प्रकृति की प्रकृति ही आज है आधार मेरा।
है सुख भरा संसार मेरा॥२॥

मैं सुखी हूँ शांत भी आनंद पाया है अनंत।
निजत्व को पूर्ण लखकर बन रहा हूँ मुक्ति कंत॥
सिद्धों के गुण नंत सारे, जीवन में ये सार मेरा।
है सुख भरा संसार मेरा॥३॥

मैं अनादिकाल से ही शक्ति रूप सिद्ध हूँ।
चेतना के शुद्ध गुण का पुंज हूँ और बुद्ध हूँ॥
मैं चेतना हूँ चेतना ही सत्य है आकार मेरा।
है सुख भरा संसार मेरा॥४॥

कुछ नहीं लेना मुझे, पर से यहाँ संसार में।
डूब नहीं सकता कभी भी मैं कर्म की धार में॥
स्वत्व में खुद को लखा तो, हो गया उद्धार मेरा।
है सुख भरा संसार मेरा॥५॥

एक और नेक

हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई,
जैन, पारसी, सिंधी भाई।
रहते एक भूमि पर सारे,
एक गगन, रवि, चन्दा, तारे॥
'एक' नीर अरु क्षीर एक है,
एक खाद्य और स्वाद्य एक है।
फल, मेवे, पकवान एक हैं,
मंदिर के भगवान एक हैं॥
मतभेदों की दीवालों को,
मन में क्यों कर पाल रखा है।
वैचारिक भ्रांति-क्रांति को,
जीवन में क्यों डाल रखा है॥
धर्म वही जो 'नेक' बनाये,
अंतर बोधि विवेक जगाये।
एक बनें और एक चुनें हम,
एक गुने और एक सुनें हम॥

समर्थ कौन ?

तन से ज्यादा वचन की शक्ति
इससे अधिक मन की है,
मन से भी ज्यादा देखें तो
वह शक्ति चेतन की है।
खड़ा हुआ है जिस भूमि पर
श्रेष्ठ उसी को माने,
सर्वश्रेष्ठ बल या शक्ति में
अपनी-अपनी ताने।
धन-वैभव से या अस्त्रों से
शस्त्रों से बल जाने,
स्वजन-परिजन मंत्र-तंत्र से
कोई अपना बल माने।
किंतु याद सदा यह रखना
ये बल सभी नश्वर हैं,
एक चेतना की शक्ति
स्वाभाविक-अविनश्वर है।

साधना की कसौटी-सहनशीलता

सहना सब हाल में भला है,
सहना सत्त्व में रहने की कला है।
सहना आगे बढ़ने की विधि है,
सहना सर्व गुणों की निधि है।
ना कहने, ना स्वात्म को दहने से,
आदमी श्रेष्ठ बनता है सहने से।
जिसने जीवन में सीखा है सहना और सहना,
उसने ही गुणाधिक्य के कवच को है पहना।
'सहना' तपने की प्रथम प्रक्रिया है,
जिसने सहा वही सम्यक् जिया है।
स्वर्ण पाषाण चोट खाकर तपता है,
तभी तो कुन्दन सा दमकता है,
सहनशील कभी भी प्रतियोगिता में-द्वितीय स्थान नहीं पाता,
वह तो सदैव ही प्रथम है आता
जहाँ सर्वयोग्यताऐं, गुण, धर्म नतमस्तक होते,
सहनशील वहाँ अपना पग रख इक क्षण में विजयी होते।

सद्धर्म में लवलीन हों

निसृत रहे जिनभक्ति उर से शिव की तथा भगवान की।
भावना उर में रहे नित स्व-पर भेद विज्ञान की॥
चर्चा धर्म की नित रहे, चर्या स्व-पर उत्थान की।
चमन संयम का लाने महकें कली गुण खान की॥१॥

निर्मल हृदय इन्दु सम, सहज सब व्यवहार हो,
शुद्ध सात्विक अरु सुपाचक मिष्ट शाकाहार हो।
आदर्श नभ से हो उत्तुंग सादा हमारा वेश हो।
दया करुणा प्रेम रस से सिंचित हमारा देश हो॥२॥

पीड़ित जनों को देखकर होते द्रवित दृग आपके।
स्वप्न में भी बन न पावें आप भागी पाप के।
संसार के हर जीव पर उर से दया झरती रहे।
धर्म की शुभ देव सरिता चित्तोदधि भरती रहे॥३॥

सत्वेषु मैत्री मंत्र की होवे सदा आराधना।
सर्वहित चिन्तन करें योगी की शुभ साधना।
निश्चिंत और निष्काम हों हम धर्म आराधन करें।
स्व-पर हित में जो समर्थ हों वही साधना करें॥४॥

विश्व में आलोक फैले धर्म के मार्तण्ड का
सत्यार्थ पथ पर नित चलें तज पंथ अघ पाखण्ड का॥
पाप पंक छोड़ सब धर्म में आसीन हों।
मिथ्या भय से हीन हों, सद्धर्म में लवलीन हो॥५॥

जीवन की अनिवार्य घटना

मौत ''जीवन की अनिवार्य घटना'' है,
अब उसे टालना संभव नहीं-
तो उसे महोत्सव रूप-
क्यों नहीं बना लेते हो?
मौत की मौत है-
समाधिमरण, मुक्तिवरण,
अतः तू बन-
तारण-तरण, गह जिनाचरण,
''लख आत्म-करण,
कर अघ हरण-
ले स्वत्व की शरण॥''

विरक्ति की अनुरक्ति

सांसारिक दुःख और प्रतिकूलताओं से हारकर
विपरीत विषय परिस्थिति की धाराओं से भागकर,
यदि ग्रहण किया हो सन्यास
या बदला हो अपना भेष विन्यास
तो आत्मा का हित तब कर नहीं सकता
परमात्मा का प्रेमी वह हो नहीं सकता।
शब्दों का पांडित्य अहं के शिखरों पर पहुँचा सकता है
परन्तु आध्यात्मिक गहराईयों को छू नहीं सकता है,
अनुभवहीन, शुकपाठी उपदेश जीवन बदल नहीं सकता
बोधि के पुष्प, समाधि के फल विकसित कर नहीं सकता।
राग आग और द्वेष हिमपात से रहित समत्व की दशा है,
वैराग्य अनादिकाल से सता रहे कर्मों के लिए सजा है।
सत्य की संप्राप्ति हेतु संघर्षों की चुनौती है,
वैराग्य समग्र के साथ सम्यक् दृष्टि है
वैराग्य स्वभाव की सृष्टि है
और संयम की वृष्टि है।
यह भेष के प्राणों पर जीने वाला तन है
सब पदार्थों से विरक्त निज में रहने वाला मन है,
वैराग्य है आत्म ध्यान की प्राणवायु, पानी खाद अरु
संयम प्रकाश से जीने वाला शाश्वत कल्पतरु॥

संयत जीवन

शाश्वत सुखद शांति आधार,
इस असार संसार जलधि से कर देता वह पार॥

सम्यक् श्रद्धा ज्ञान उभय तट, संयम नीर-बहे यहाँ झटपट।
सद् विराग आवीचि अनंता, पार न पावैं ऋषि गण संता॥
आप स्वयं ही पूर्ण समर्था भव शिव सेतु महान।
शाश्वत.....॥१॥

गति निर्बाध सकल मन मोहै, औदारिक तन पे नित सोहै,
रागद्वेष का बन कर हंता, निज स्वभाव का एक भगवंता।
जग की सकल विषमताओं में होती कभी न हार।
शाश्वत.....॥२॥

भेदभाव का मूल मिटाता, विश्व प्रेम का गाना गाता,
सुख संवर्द्धक निज अविनाशी, धर्मदान का तू विश्वासी।
अर्हंत् सिद्ध शाश्वत मूल्यों का पा लेता अधिकार।
शाश्वत.....॥३॥

रत्नत्रय सर्वोच्च शिखर पर, धर्म ध्वजा लहराता सुखकर,
शाश्वत गुण का 'अमिट जिनालय' पाता चेतन शुद्ध शिवालय,
आत्मलीन होता जब निज में, मिटे कर्म का भार।
शाश्वत.....॥४॥

एकाकी निर्भीक अनोखा, देता कभी न पाता धोखा।
लक्ष्य असंभव सा जो लगता, स्वात्मबोध निज में खुद जगता,
चेतन की निःशब्द ध्वनि ही चेतन रहा पुकार॥
शाश्वत.....॥५॥

सिद्धालय का सदन मिला है, चिन्मय चेतन चमन खिला है
सर्व बीज हो फलित यहाँ पर, पुनरागमन न तभी वहाँ पर
बन नौका जीवन संयम ये पहुँचाता भव पार॥

शाश्वत.....॥६॥

लगी है प्रीत

लगी है प्रीत मम तुमसे, तो दर पे तेरे आना क्यों।
हरा मम चित्त ही तुमने, तो अब तुमको मनाना क्यों॥
सुना है आप मिलते हैं, जिनालय में शिवालय में,
मेरे चित् में हो तुम अंकित, मिलोगे तुम जिनालय में,
तुम्हीं वक्ता तुम्हीं श्रोता, तो अपना दुःख सुनाना क्यों।
लगी.....॥१॥
पड़ी है नाव भव सिंधु, चाहो तो पार कर देना,
कहूँ दुःखड़ा कहाँ तक मैं, चाहो तो पीर हर लेना।
तुम्हीं हो मम हृदय वासी, तो तुमसे लौ लगाना क्यों।
लगी.....॥२॥
कोई मिलता यहाँ हँसके, कोई रो रोके मिलता है,
किसी का मन मचलता है, किसी का चित्त खिलता है।
नहीं हैं अब वियोगी क्षण, तो पर से मन लगाना क्यों।
लगी.....॥३॥
नहीं हैं मित्र इस जग में, नहीं शत्रु भी दिखता है।
हमारा कर्म ही नित-नित हमारा भाग्य लिखता है।
तू ही है भाग्य विधि लेखक, तो लिखकर फिर मिटाना क्यों।
लगी.....॥४॥
तुम्हीं हो ईश प्रभु सेवक, तुम्हीं गुरु शिष्य हो सच्चे,
तुम्हीं हो पुण्य अरु अघ भी तुम्हीं शिवबंध हो अच्छे।
कहे वसुनंदी नित तुमसे, तो जल में जल मिलाना क्यों।
लगी.....॥५॥

मैं पीड़ित पर पीर से

अपने दु:ख से नहीं दु:खी मैं, मैं पीड़ित पर पीर से।
मैंने अपनी कही भावना, वर्धमान महावीर से,
तीर्थंकर महावीर से...।
तीन लोक के जीव सभी ही, दु:खी दिखाई देते हैं।
अपने दु:ख के नाश करन को, सबसे सब कुछ लेते हैं॥
किन्तु वीर प्रभु दुनिया से, ना कुछ लेते देते हैं।
हर प्राणी की पीड़ा को वे, करुणा से हर लेते हैं॥
सदा स्वयं में लीन रहे नित, दिखते सहज गंभीर से।
मैंने अपनी कही भावना.....
मोहनीय अज्ञान असंयम सबको ही दु:ख दाता है।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण ही भवजन के इक त्राता है॥
धर्म छोड़ जो पाप कमाता, दुर्गति में ही जाता है।
भाव धर्म जो आतम धरता, शिव सुख को वो पाता है॥
गुरु बिन सभी भक्त जन दिखते, देखो सदा अधीर से।
मैंने अपनी कही भावना.....
मेरे भक्ति भाव की भाषा, भ्रमर सदृश गुंजाती है।
मेरे मन की शुद्ध भावना, तुमको नाथ मनाती है॥
राग रहित निर्दोष दिगम्बर रूप तुम्हारा मन भाया।
अंदर की श्रद्धा भक्ति से, तव पद दर्शन को आया॥
आज पखारुँ मैं पद तेरे, निज नयनों के नीर से।
मैंने अपनी कही भावना.....
है अनित्य संसार स्वार्थी, अशरण है सब ही प्राणी।
राग द्वेष मद मोह विनाशक, है जिनेन्द्र तेरी वाणी॥

तीन लोक तिहुँ काल सदा ही, भव्य जनों की कल्याणी।
भावी सिद्ध पुरुष ही मन में, ध्याते हैं नित जिनवाणी
वसुनंदी बन कर्म हनूँगा, जिन वचनों के तीर से
मैंने अपनी कही भावना.....

प्रभु कैसे तुम्हें मनाऊँ मैं

मिथ्यातम का घोर अंधेरा, अज्ञान तिमिर डाले है डेरा,
अविरत दुष्ट ने मुझको घेरा, मिटा नहीं भव-भव का फेरा।
ऐसे विषम समय में प्रभु जी, कैसे तुमको ध्याऊँ मैं,
प्रभु कैसे....॥
चारों ओर बरसता पानी, चलती हवा तीव्र तूफानी,
पल-पल होय तेल की हानि, बाति की हम जात न जानी।
बिन चकमक माचिस दीपक के, कैसे दीप जलाऊँ मैं,
प्रभु कैसे....॥
रहे हमेशा चंचल ये मन, भूखा ही भूखा रहता तन,
रुँधा कंठ न खिरे वचन मम, ना जानूँ अर्चन नर्तन सम।
बुद्धहीन कपटी कामी हूँ, कैसे पूज रचाऊँ मैं,
प्रभु कैसे....॥
मेरा जीवन पत्थर अनगढ, मिट्टी भी है ऊबड़-खाबड़,
विषय कषाय अरु पापों में पड़, भव वारिधि में डूबा सड़ सड़।
एक बार प्रभु हाथ पकड़ लो, मरण समाधि पाऊँ मैं,
प्रभु कैसे....॥
विद्यानंद आशीष मिला है, मेरा हृदय सरोज खिला है,
कर्मों का भी पहाड़ हिला है, आतम का वैभव निकला है।
वसुनंदी वसु वसुधा पाने, याम वसु गुण चाहूँ मैं,
प्रभु कैसे....॥

श्री निर्ग्रंथ गुरु स्तवन

श्री सर्वज्ञ अरिहंत जिनेश्वर सर्वघाति विधि नाशक हो।
राग-द्वेष के हंता हे जिन, वीतराग गुण शासक हो॥
नंत चतुष्टय सद्गुण धारी, निज के पूर्ण प्रकाशक हो।
जीवन्मुक्त चिदानंद स्वामी, नमूँ सदा सुख भासक हो॥१॥

सर्व कर्म से रहित सिद्ध प्रभु, लोक शिखर के वासी हो।
द्रव्य भाव नो कर्म विवर्जित, निज गुण पूर्ण विकासी हो॥
अष्टगुणों से नित्य समन्वित, द्रव्य दृष्टि अविनाशी हो।
निज में निज सिद्धि को पाऊँ, तुम तो श्री अधिशासी हो॥२॥

दर्शन, ज्ञान, चरित तप वीरज पंचाचार सदा पालें।
भव्य जनों को संबल देकर अशुभ कर्म उनके टालें॥
गुण छत्तीस मूल गुणधारी सूरि देव जग वंदित हैं।
कलियुग में हे धर्म प्रणेता क्षिति तुमसे आनंदित है॥३॥

ग्यारह अंग पूर्व चौदह के, पाठक गण सद् सूर्य प्रभो।
अध्ययन-अध्यापन करते नित हरें तिमिर अज्ञान विभो॥
ज्ञान मूर्ति मुनि उपाध्याय को योगत्रय से वंदन है।
धर्मप्रभावक आत्मलीन गुरु तीर्थंकर लघुनंदन हैं॥४॥

विषय कषाय आरंभ परिग्रह सर्व पाप परित्यागी हो।
भव, तन भोग व पर अर्थों से आप पूर्ण वैरागी हो॥
ज्ञान ध्यान तप लीन निरंतर रत्नत्रय के स्वामी हो।
चरण वंदना करूँ आपकी, मुक्तिरमा अनुगामी हो॥५॥

हैं धरती के आप देवता पूर्ण दिगम्बर अविकारी।
तव वचनों में सदा झलकती वाणी जिन की हितकारी॥
स्व-पर हितैषी आप जगत में भव वारिधि के तारनहार।
हे प्राणेश सदा उर वासी करो नमन मेरा स्वीकार॥६॥

मन वच तन से हिंस भाव का त्याग किया श्री गुरुवर ने।
स्व-पर प्राण की रक्षा का शुभ ग्रहण किया व्रत मुनिवर ने॥
दया रहम करुणा मृदुता के खुद आलय बन कर जीते।
लखकर निर्निमेष वन्य पशु एक घाट पानी पीते॥७॥

अहिंसा परम धर्म स्वीकारा तीन काल तिहुँ लोकों ने।
यही विश्व की जननी निश्चित लिक्खा सब ही श्लोकों में॥
दया अहिंसा करुणा पालन संत दिगम्बर नित करते।
उनके युगल चरण अम्बुज में भविजन नित मस्तक धरते॥८॥

सर्व पाप का मूल मृषा है, सत्य कहा वृष का आधार।
उसी सत्य को संत दिगम्बर, करते पूर्ण रीति स्वीकार॥
सत्य धर्म का प्राण नादि से, ऋषि मुनि सब कहते आये।
इसीलिये तो संत दिगम्बर, भगवन् सम हमको भाये॥९॥

बहुत कठिन है पर वस्तु या परभावों का त्याग प्रभो।
स्वकीय चतुष्टय में रहना ही सर्व श्रेष्ठ तप कहा विभो॥
किन्तु दिगम्बर संत निरंतर शाश्वत निज गुण अभिलाषी।
चौर्य पाप का पूर्ण त्याग कर, रहें सदा निज घटवासी॥१०॥

मैथुन भाव राग मूलक है, राग द्वेष भव के कारण।
माता-बहिन सुता सम जाने सर्व अंगना गुरु तारण॥

पर परणति का पूर्ण त्याग कर निज आतम में लीन रहें।
यथाजात निर्ग्रंथ दिगम्बर ब्रह्मचर्य परवीण कहें॥११॥

पर का ग्रहण परिग्रह माना, यही मूर्च्छित करता है।
पर भावों का संग्राहक ही आत्मबोधि से डरता है॥
चिन्मय शाश्वत निज निधि पाने, सकल वस्तु परित्यागी हैं।
उन्हीं दिगम्बर संत चरण की रज पाने अनुरागी हैं॥१२॥

जिन्हें देखकर सर्प नेवला बैर सदा को तज देता।
सिंह शावक अरु धेनु वत्स पय इक दूजी का भज लेता॥
जिन्हें देखकर पूर्ण प्रकृति भी प्राकृत मोद मनाती है।
यथाजात निर्ग्रंथ दिगम्बर की छवि चित्त लुभाती है॥१३॥

ये धरती के दिव्य देवता, तीन लोक के गुरुवर हैं।
दिनकर सम ये अघ तम हारक पुण्य प्रकाशक प्रभुवर हैं॥
यथाजात निर्ग्रंथ गुरु की पदरज ही संजीवन है।
करुण चित्त स्नेहिल दृष्टि, देती नूतन जीवन है॥१४॥

जिनकी तपनिधि को लखकर के इन्द्र स्वयं वंदन करता।
ध्यानमूर्ति योगीश्वर साधक, तीन लोक क्रंदन हरता॥
चंदन सम शीतल रज पग की भव संताप मिटाती है।
यथाजात निर्ग्रंथ गुरुवर की नित याद सताती है॥१५॥

यथाजात निर्ग्रंथ दिगम्बर का तन सत्य प्रकाशक है।
सूरज सम निज चित्त गुणाम्बुज का यह पूर्ण विकाशक है॥
नाम मात्र जिह्वा से बोले, शांति स्वयं तत्क्षण मिलती।
चन्द्र रश्मि पाकर ज्यों नलिनी सुखद भूति पाकर खिलती॥१६॥

जिन्हें देखकर क्रोधी जन भी क्षमा भाव धारण करते।
मानी दंभी द्वेषी प्राणी कोमल विनय भाव धरते।।
निर्मल शीतल जल सम जिनका चित्त शांति बरसाता है।
यथाजात निर्ग्रंथ चरण लखि, सबका मन हरषाता है।।१७।।

लोभ छोड़ संतोष धरें जन, सरल बनें अरु छल छोड़ें।
पुण्य भाव संग्राहक बनते, धर्म भाव चित में जोड़ें।।
यथाजात निर्ग्रंथ गुरु की, महिमा ऐसी देखी है।
अनुभव में भी आयी मेरे, आगम में भी लेखी है।।१८।।

समता भाव सदा उर धारें राग-द्वेष परिहारी हो।
निज वैभव के पूर्ण प्रकाशक रविसम तम अघ हारी हो।।
तव द्वय चरण उराम्बुज रखकर नित्य ध्यान मैं लखता हूँ।
यथाजात निर्ग्रंथ गुरु के चरणों में उर धरता हूँ।।१९।।

सिद्धों के वंशज हैं गुरुवर अरिहंतों के नंदन हैं।
जिनवाणी के आप लाडले कलियुग में ये कुंदन हैं।।
पाप, ताप, संताप विनाशक इनकी पद रज चंदन है।
यथाजात निर्ग्रंथ गुरु के चरणों में नित वंदन है।।२०।।

अक्ष विजेता पाप प्रखण्डी, आत्म सुधारस भोगी हैं।
मन वच तन से सहज सरल अरु शुद्ध चिदातम योगी हैं।।
यथाजात निर्ग्रंथ गुरुवर हृदय कमल पर वास करो।
खास दास की आस यही मत मेरा चित्त उदास करो।।२१।।

काम बाण के बाण बेधकर ज्ञान बाण निर्वाण हुये।
आत्मबोध के दिव्य तेज में मोह महातम नाहिं हुये।।
यथाजात निर्ग्रंथ दिगम्बर शाश्वत धर्म रूप माना।
निज चित् में लखि बिम्ब आप का, मैंने निज को पहचाना।।२२।।

ध्यान वह्नि में कर्मजलाकर बनें मुक्ति रमणी स्वामी।
निज मुक्ति का वांछक भविजन क्यों न बने तव अनुगामी।
यथाजात निर्ग्रंथ गुरु पर मुक्ति रमा मोहित होती।
आराधक तव आराधन से लखें सदा आतम ज्योति॥२३॥

जिनवर की वच सिंधु सुधा से जो चुनते आगम मोती।
जिनवचनामृत की शुभ धारा, राग-द्वेष मल को धोती॥
होती निर्मल आतम निश्चित यथाजात गुरु ज्ञानी की।
को महिमा गा सकता जग में, शुद्धातम निज ध्यानी की॥२४॥

पर को निज का कर्ता ये जग, मूढ़ बना यूँ ही माने।
निज को पर का स्वामी कहकर अपनी ही अपनी ताने॥
यथाजात निर्ग्रंथ दिगम्बर भेद ज्ञान दरशाते हैं।
उनके चरणों में यम लेकर, भगवन् खुद बन जाते हैं॥२५॥

निज वैभव को भूल आज तक पर परणति लपटाया था॥
निज गुण न लखि सका आज तक पर को न रख पाया था॥
उभय भ्रष्ट हो भव वन घूमा निज आतम को न जाना।
यथाजात निर्ग्रंथ गुरु ने दिया मोक्ष का परवाना॥२६॥

मेरी शुद्ध सिद्ध निज परणति नहीं आज तक हम जानी।
द्रव्य ज्ञान हित नर भव खोया, आत्म ज्ञान निधि न मानी॥
यथाजात निर्ग्रंथ गुरु ने भेद ज्ञान कर दिखलाया।
शाश्वत सिद्धि पंथ गुरुवर ने चलकर हमको सिखलाया॥२७॥